ओ३म् । कृण्वन्तोविश्वमार्यम् (वेद)

पूज्यपाद आचार्य प्रेमभिक्षु जी अस्वस्थ

अपने तपोभूमि परिवार एवं आर्य जगत्को बड़े दुःखके साथ सूचित किया जाता है कि तपोभूमि के तपोनिष्ठ यशस्वी सम्पादक पूज्यपाद आचार्य प्रेमभिक्ष जी (श्री ईश्वरी प्रसाद ('प्रेम') अचानक असाध्य बीमारी (मूर्छा) से ग्रसित हो गये है। वर्तमान में वे रामकृष्ण मिशन अस्पताल वृन्दावन में प्रविष्ट हैं! परम पिता परमात्मा से उनके शीघ्र स्वस्थ होने की कामना करता हुआ विश्वास रखता हूँ कि सङ्कट की इस विषम परिस्थिति में आपका हर प्रकार का सहयोग हमें सम्बल प्रदान करेगा।

आपका सहयोगाकांक्षी
—आचार्य स्वदेशः
कार्यावाहक सम्पादक

वेद-प्रचार-वाहन हेतु प्राप्त दान सूची [गतांक से आगे]

२१०००) चौ०हनुमान प्रसाद उदयपुर ५१००) राजकुमार अग्रवाल
५०००) रमेश गुप्ता सिलीगुड़ी २१००) ब्र० नरेन्द्र जिज्ञासु सऊ
१६००) श्रीविनोद सोई मंत्रीलुधियाना १५००) आ. स. सहार मथुरा
११००) श्री राधाचरण जी मथुरा ११०१) ओमदत्त व्यावर
१०००) श्रीइन्द्रमोहन १०००) लक्ष्मीदेवी दिल्ली
१०००) दयावती सहगल १०००) श्री रमेश जी
१०००) भोजेन्द्रसिंह माधुरी कुण्ड ५००) श्री रामस्वरूप शाहपुरा
१०००) मंत्राणी स्त्री आ. स. गंगानगर १०००) योगेन्द्र, रामकिशनजी
५११) गोपीचन्द जी गुड़गाँव ५०१) आ० स० गाँधीधाम
५०१) डा० उमेश माहेश्वरी मथुरा ५०१) अभिलेश बरेली
५००) श्री महीपालसिंह चंदोसी ५००) श्री देवराम अग्रवाल मद्रास
५०१) डा० हुकमसिंह शान्ति स्वरूप पलवल
५००) देवरकोण्ड दत्तात्रेय परकाल ५००) भुजराम भाकड़ रावतसर
५००) श्रीराम किशोर होशंगाबाद २५०) श्री शङ्करलाल गुप्त बम्बई
१०१) वी० वी० सिंह मथुरा १०१) डा० एस० वृन्दावन
१०१) एस० सी० मथुरा १०१) हरिओम् मथुरा
१०१) रासबिहारी वृन्द्रावन १०१) डा० उदयप्रताप गोरखपुर
१०१) वीरेन्द्र गुप्त गोरखपुर १०१) सुनीत जायसवाल पटना
१०१) पद्मिनी गुप्ता, गोरखपुर १०१) कुँवरपाल शास्त्री गाजियाद
५१) सतीश कुमार वर्मा

[शेष क्रमशः अगले अङ्क में]

वर्ष ४२] फाल्गुन २०५१ मार्च १९९५ [वा० शु० २५)
अङ्क २] सृष्टि संवत्सर १९६०८५३०९५ [होता शु० ४०)

खुद को मिटाना जिन्दगी है ! —माया वर्मा

दर्द का पीकर हलाहल, मुस्कराना जिन्दगी है।
बच सके कोई अगर—तो चोट खाना जिन्दगी है ॥

है बड़ा उपकार—आशा के सुनहरे कण लुटाना।
औ किसी की पीर में हँसते हुए हिस्सा बँटाना ॥

जुड़ सके कोई हृदय, टूट जाना जिन्दगी है।
बच सके कोई अगर–तो चोट खाना जिन्दगी है ॥

है बड़ा उपहार आस्था का–करुण विक्षुब्ध मन को।
प्यार की विश्वास की है भेंट, सर्वोत्तम-स्वजन को ॥

मुस्कुराये मीत—तो आँसू बहाना जिन्दगी है।
बच सके कोई अगर—तो चोट खाना जिन्दगी है ॥

है सफल जीवन उसी का, जो पराये हित जिया है।
है अमर वह व्यक्ति–जिसने बिश्वहित का व्रत लियाहै ॥

बच सके नौका अगर–तो डूब जाना जिन्दगी है।
बच सके कोई अगर–तो चोट खाना जिन्दगी है ॥

है ऋणी इतिहास उनका—रक्त जो निजदान करते।
बांते अमृत जगत को—खुद हलाहल पान करते ॥

विश्व के निर्माण में खुद को मिटाना जिन्दगी है।
बच सके कोई अगर—तो चोट खाना जिन्दगी है ॥

भद्र साधना - स्व० विद्यानन्द 'विदेह'

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः।
भद्रा उत प्रशस्तयः॥ =ऋग्वेद ८।१९।१९, य० १५।३८॥

१—(सु-भग) सुधनों के दातः! (आ-हुतः अग्निः नः भद्रः) आहुत अग्नि हमारे लिये भद्र हो।

जिस अग्नि में सुहवियों और शुद्ध घृत की आहुतियाँ दी जाती हैं उसे 'आहुत अग्नि' कहते हैं। अग्निहोत्र करते हुए हम अग्नि में जो आहुतियाँ दें वे शुद्ध, सुगन्धित और पुष्टिकर हों। इस सूक्ति में उल्लिखित जो 'आहुत अग्नि' है वह आत्माग्नि है। मानवजीवन सर्व-श्रेष्ठ और सर्वोपरि यज्ञ है, जिसमें आत्माग्नि आहित है। इस यज्ञ के भीतर आत्माग्नि में हम जो आहुतियाँ दें वे सर्वथा भद्र हों। भद्र चिन्तन दर्शन, भद्र श्रवण, भद्र भावना, भद्र भद्र आचार—ये ही जीवनयज्ञ की भद्र आहुतियाँ हैं। तद्विपरीत जो आहुतियां हैं वे अनाहुतियां हैं, अभद्र आहुतियां हैं। आत्मा वह आहुत अग्नि है जिसमें प्रत्येक मानवसतत—सन्तत—निरन्तर आहुतियां होमता रहता है। जो उसमें भद्र आहुतियाँ देते हैं वे निहाल हो जाते हैं। जो उसमें अभद्र आहुतियाँ देते हैं वे निहाल हो जाते हैं। जो उसमें अभद्र आहुतियाँ अथवा अनाहुतियाँ देते हैं वे पामाल [बर्बाद विनष्ट हो जाते हैं। भद्रो नो अग्निराहुतः, कितनी प्यारी है यह वेदसूक्ति!

२—(सु-भग) प्रेभो! (नः रातिः भद्रा) हमारी राति भद्र हों।

'रातिः' गतिकर्मा। 'रातिः' दानकर्मा। जैसी जिसकी गति वैसा उसका दान। स्वजीवन की गतियों के अनुरूप ही प्रत्येक मानव की अपने जीवन से मानवसमाज के लिये देने होती हैं। भद्र जीवन से भद्र देने दी जाती हैं तो अभद्र जीवन से अभद्र देने। हमारे जीवन भद्र हों और हम अपने जीवनों से भद्र देने ही संसार को दें।

३—(सु-भग) सुःऐश्वर्यों के स्वामिन्! (नः अध्वरः भद्र) हमारा अध्वर भद्र हो।

'अध्वर' यज्ञनाम। अध्वर नाम यज्ञ का है, उस यज्ञ का जिसमें हूर्छा, कुटिलता छल-कपट, हिंसा और व्यवधान न हो। मानव का जीवनयज्ञ ही वह अध्वर है जिसका अनुष्ठान बिना किसी व्यवधान के सौ वर्ष तक निरन्तर चलना चाहिये। इस यज्ञ के अनुष्ठान में हुर्छा आदि दोषों का प्रवेश हो जाता है तो यज्ञ-भ्रष्ट हो जाता है तो यज्ञ-भ्रष्ट हो जाता है। हमारा जीवनोध्वर आदि से अन्त तक ऐसा भद्र हो कि उसके किसी भी अङ्ग में ध्वर का प्रवेश न होने पाये।

४—(उत) और, (सु भग) आत्मैश्वर्यों के प्रदातः! (नः प्रशस्तयः भद्राः) हमारी प्रशस्तियाँ भद्र हों।

शिष्टाचार के लिये हमारी प्रशस्ति हो। शत्रु और मित्र, सभी हमारे शिष्टाचार पर मुग्ध हों। मधुर व्यवहार के विषय में हमारी प्रशस्ति हो। हमारा व्यवहार ऐसा मधुर हो कि सब हमारे माधुर्य की प्रशंसा करें। आतिथ्य के लिये हमारी सर्वथा प्रशंसा हो। शुभ साधों और कार्यों के लिये मुक्त हस्त से दान करके हम दान-प्रशस्ति प्राप्त करें। सत्यपुरुष के अनुकरण और धर्माचरण से हमें सदाचार-प्रशस्ति प्राप्त हो। सत्यभाषण के लिये भी हमारी प्रशस्ति हो। दाम्पत्यशुचिता भी हमारी श्लाघ्य और अनुकरणीय हो। धर्म धर्म से धन और धन से धर्म—यह अर्थ शुचिता-प्रशस्ति है। सेवाओं के क्षेत्रों में भी हम, ख्यातनामा हों। सब क्षेत्रों और सब पार्श्वों में सब ओर हमारी प्रशस्तियाँ हों। प्रभो! हमें भद्र-साधना दो।

भद्र भद्रताओं से शोभित जो जीवन है।
मानवता के लिये धन्य वह हो जीवन है॥

अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो वृद्धः सन्किं करिष्यसि।
स्वगात्रायणपि भाराय भवन्ति हि विपर्यये —योगवशिष्ठ

जो अपने कल्याण की बात है, उसे आज हीं कर डालो। वृद्ध हो जाने पर क्या करोगे? वृद्धावस्था में तो अपना शरीरभी भार हो जाता है। ※

रथ का सुसंचालन

—विद्यानन्द 'विदेह'

रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ।।

—य० २९।४३, ऋ० ६।७५।

रथ के जूए पर स्थित सारथि यदि 'सु' हो तो वह रथ में युक्त अश्वों को अभीष्ट स्थान की ओर आगे ही आगे बढ़ाये चला जाता है। सारथि 'कु' होता है तो घोड़ों को गलत रास्तों पर ले जाकर उन्हें ठोकरें खिलाता है और रथ को खड्डे में गिरा देता है।

जो अश्वों की रासों को सावधानी के साथ थामे रहता है और अश्वों को सही दिशा में मोड़ता है वह सुसारथि है। जो रासों को ढीली छोड़े रहता है और घोड़ों को गलत दिशा में मोड़ता है वह कुसारथि है। सुसारथि सवार को सुरक्षा के साथ अभीष्ट स्थान पर पहुँचता है। कुसारथि सवार को अभीष्ट स्थान पर न पहुँचाकर उसे इधर उधर भटकाता है।

मानवजीवन रथ है। आत्मा सवार है। मन सारथि है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ जीवनरथ में युक्त दश वाजी [घोड़े] हैं। ज्ञान कर्मेन्द्रिय रूपी दश घोड़े जुड़े होने से जीवनरथ कहते हैं।

वृत्तियाँ दश अश्वों की रासें हैं। वृत्तियाँ 'सु' हों तो मन सुसारथि बन जाता है। इसीलिये वेदमाता ने कहा है, 'लोगो! अभीशूनाम महिमानस पनायत, वृत्तियों की महिमा को समझो। 'अभीशु' शब्द का प्रयोग वृत्तिरूपी रासों के लिये हुआ है।

'रश्मयः' शब्द का प्रयोग हुआ है यहाँ इन्द्रियों के लिये। इन्द्रियाँ मन के पीछे दौड़ती हैं। जैसा मन वैसी हीं इन्द्रियों की गति। मन के शोधन से इन्द्रियों का शोधन स्वयमेव हो जाता है। मनःशोध से मन संयम सिद्ध होता है। मनःशोध से ही जितेन्द्रियता की सिद्धि होता हैं। मन को शुद्ध और सिद्ध करलो, सब काम बन जायेगा। अन्यथा विगाड़ होगा।

पाप और ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी से डरिये

सङ्कट भयङ्कर तब तक लगता है जब तक उसके साथ मुठ-भेड़ नहीं होती। जब उसके साथ गुथजया जाता है और मानसिक सन्तुलन बिगड़ने नहीं दिया जाता तो प्रतीत होता है कि जितना सोचा गया था—उससे आधी चौथाई भी उसकी भी उसकी वास्तविक भयानकता नहीं थी। सङ्कटों के साथ गुथने का जैसे-जैसे अभ्यास होता जाता है, वैसे-वैसे वे स्वाभाविक दैनिक कार्यों की तरह सरल प्रतीत होने लगते हैं।

अपने लिये साँप और शेर बहुत भयङ्कर होते हैं पर बहुत से लोगों का धन्धा ही उन्हें पकड़ना, मारना है। सपेरे रोज ही काले विषधर नाग पकड़ते हैं, शिकारी आये दिन शेर बाघ का शिकार करते हैं उन्हें वे जराभी डरावने नहीं लगते वरन् उन्हें ढूँढ़ते रहते हैं और मिल जाने पर प्रसन्न होते हैं। जबकि अजनवी व्यक्ति को साँप शेर की तस्वीर देखते और चर्चा सुनने भर से पसीना छूटता है। डर से बचने के उपाय सोचते रहने पर भी उनसे बचे भी रहेंगे इस बात का कोई निश्चय नहीं। बीमारी कौन चाहता है? मौत किसे सुहाती है पर जब आने की घड़ी आ पहुँचती है तो बचने की सारी तरकीबें बेकार चली जाती हैं। निशङ्क होकर रहना और जब जो सङ्कट आवेगा उससे निपट लिया जायगा ऐसी हिम्मत रखना, बस संसार में चैन से रहने का यही तरीका है।

हिम्मत हार जाने पर तो मौत के मुंह में जाने के अलावा और कुछ रास्ता बनता नहीं। कथा है कि—एक बार यमराज ने महामारी को पृथ्वी पर भेजा और पाँच हजार मनुष्य मार लाने के लिये आदेश किया। बीमारी गई और अपना काम पूरा करके लौट आई। मृतक गिने गये तो वे पन्द्रह हजार थे। यमराज ने ठाढा और पूछा—आदेश से तिगुने मृतक क्यों? महामारी ने गम्भीरता पूर्वक कहा—उसने केवल पाँच हजार ही मारे हैं। शेष तो डर के मारे खुद ही मर गये हैं।

मानसिक दुर्बलता के अतिरिक्त डर का एक और कारण है—अनैतिकता। जिसकी अन्तरात्मा कलुषित और पाप कर्म से लिप्त है वह कभी चैन की नींद न सो सकेगा। बेईमान और झूठा मनुष्य आँखें मिलाकर दूसरों को नहीं देख सकता और न जी खोलकर बात करने की हिम्मत पड़ती है। बनावटी उथली—उखड़ी बातें करते हुए उसका ओछापन प्रत्यक्ष प्रकट होता रहता है और उसकी मुखाकृति, चेष्टा, भावभंगिमा, गतिविधियाँ वास्तविकता प्रकट करती रहती हैं। अपना आपा ही—चुगली करता है और मूक वाणी से यह घोषित करता रहता है—कि यहाँ धोखा ही धोखा है।

कर्जदार अक्सर अनैतिक लोग ही होते हैं। आमदनी से अधिक खर्च करना—चोरी, उठाईगीरी की तरह सर्वथा अनैतिक है। अपनी हैसियत, औकात, आमदनी से बढ़कर ठाठ-बाट बनाना, दूसरों को ठगने जैसी कुचेष्टा ही है। ऐसे फिजूल खर्च लोग कर्जदार हो जाते हैं, चुका पाते नहीं, मित्रों के बीच न उनका विश्वास रह जाता है न सम्मान। जिनका पैसा चाहिए उनसे आँखें चुराते हैं और नये शिकार तलाश करते हैं। ऐसे लोग पग-पग पर डरते रहते हैं कि कर्जदार उनकी इज्जत खराब न करदें। हर किसी को आशङ्का भरी दृष्टि से देखते हैं कि कहीं किसी को उसके कपट जाल का पता न चल गया हो और कोई उसका भण्डाफोड़ न कर दे। यह आशङ्का अपने आप में इतनी डरावनी है कि मिलने वाले दण्ड की अपेक्षा वह पहले ही मानसिक श्रेष्ठता, स्वभाव और सद्गुणों का नाश कर चुकी होती है।

डर का एक बड़ा कारण अज्ञान भी है। आदिम काल में मनुष्य को सूर्य ग्रहण, बिजली की कड़क, पुच्छल तारे आदि के बारे पता न था। वह इनसे डरता था और देवता समझ कर उनके कोप से बचने के लिये तरह-तरह के पूजन बलिदान करता था। पीछे जब वास्तविक समझ में आ गई तो वह डर सहज ही चला गया।

भूत लीतों का डर अब धीरे-२ समाप्त होता चला जाता है।

ग्रह दशा —जन्म कुण्डली जैसी फलित ज्योतिष की मान्यतायें भी लगभग ऐसी ही हैं। कभी सोचा जाता था कि आसमान में रहने वाले ग्रह नक्षत्र मनुष्यों पर कोप अनुग्रह करते हैं इसी से उसे सुख दुःख मिलते हैं। अब यह प्रकट हो गया है कि यह आकाश में स्थित पिण्ड निर्जीव हैं बहुत दूर हैं और व्यक्तिगत रूप से उनका किसी को दु ख सुख पहूँचा सकना असम्भव है। यह तथ्य समझ में आने पर लोगों ने ग्रह नक्षत्रों से—कल्पित देवी-देवताओं से डरना छोड़ दिया है। ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ अनेक प्रकार के डर स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं।

जिसका भय करना चाहिए उसका नहीं किया जाता और जिनका डर करने की कतई जरूरत नहीं, उनसे डरते रहते हैं। पाप से डरना चाहिए और ईश्वर के न्याय से। पर इनसे कौन डरता है। चोरी करते हुए, भोले लोगों को ठगते हुए, छल प्रपंच रचते हुए नशेबाजी, व्यभिचार, बेईमानी, असत्य भाषण करते हुए कौन डरता है? डरते हैं मिट्टी के पुतले मनुष्य से—लोहे के टुकड़ों से बने हथियारों से काल्पनिक भूत पलीतों से और दीन दुर्बल, कुकर्मी आतङ्कवादियों से—हमें अपने इस अज्ञान को समझना चाहिए। मनुष्य की गरिमा को समझना चाहिए और उन अकिंचन व्यक्तियों वस्तुओं, और परिस्थितियों से—डरने से इन्कार कर देना चाहिए जो वस्तुतः तुच्छ एवं असमर्थ है। डरना ही तो ईश्वर की दण्ड व्यवस्था और दुष्प्रवृत्तियों से डरना दुःख तो हमें इन्हीं के कारक सकता है।

सबसे अधिक निर्धन मनुष्य वही है, जिसके पास धन के सिवा कुछ नहीं। धनी तभी उत्तम कहा जाता है जबकि उसमें धन के सदुपयोग की योग्यता हो।

लघु कथा—

हृदय परिवर्त्तन

राजस्थान के बीहड़ दुर्गम स्थान में किसी धनीमानी सेठ ने पानी की प्याऊ खोली थी। उस प्याऊ पर एक श्रमिक थके माँदे पथिकों को बड़े प्रेम से जल पिलाता था। एक दिन उस प्याऊ पर प्यास से छटपटाता पथिक आया। वह उस ओर का कुख्यात डाकू था। प्यास की मार ने उसे बड़ा कातर बना दिया था। जीवन दीप उसका बुझने ही वाला था कि शीतल जल की धारा ने उसे फिर से प्रदीप्त कर दिया। प्राण उसके बच गए। वह पैरों पर फिर खड़ा हो गया। धन से लदे ऊँटों को लेकर चलने लगा, पर फिर सहसा रुक गया। सोचा यदि शीतल जल न मिलता, तो आज मैं मर जाता, फिर इन ऊंटों को कैसे ले जाता? कुछ समय सोचता रहा। फिर मानो उसने सोच लिया। सारा धन श्रमिक को देकर चलने लगा। श्रमिक ने रोका। डाकू रुका। श्रमिक बोला 'प्याऊ मेरा नहीं, सेठ का है, धन देना है तो सेठ को दो।

डाकू सन्नाटे में आ गया। अपने से कहने लगा कि जिस धन के लिए मैं निर्दोषों को लूटता, सताता और मारता हूँ, उस धन को सहज पाकर भी श्रमिक ठुकरा रहा है। श्रमिक ने उसकी आँखें खोल दीं। एक प्राण लेता, तो दूसरा प्राण देता है। मनुष्य में कितना अन्तर है। जिस प्रकार सूर्य के ताप से सागर जल भाग बन कर ऊपर उठता है और फिर वायु के सम्पर्क में आकर बरसता और शीतलता पहुँचाता है, उसी प्रकार वह डाकू उस श्रमिक के उपकार से बिल्कुल बदल गया। शिष्य की तरह प्रणाम करके डाकू फिर वहाँ नहीं रुका। वह चल दिया वहाँ, जहाँ से अपार धन वह लूट कर लाया था। उस गाँव में पहुँच कर उसने एक बड़ा वस्त्र बिछाने का आदेश दिया। उसके आदेश पर देखते ही देखते बहुत लम्बा चौड़ा सफेद कपड़ा धरती पर बिछ गया। ऊँटों पर लदा धन खाली होने लगा। ऊँट खाली होने पर डाकू ने सारा धन गरीबों में बाँट दिया। ❀❀

धर्म और विज्ञान को मिलकर चलना होगा

समग्र ज्ञान को दो भागों में बाँटा जा सकता है एक अन्तर्बोध पर आधारित अध्यात्म अथवा धर्म। दूसरा तर्क, परीक्षण, अनुभव तथा बताये गये तथ्यों के आधार पर भौतिक जगत् सम्बन्धी निष्कर्ष इनसे में प्रथम को विद्या दूसरे को शिक्षा कहा जा सकता है, प्रथम जानकारी को प्रज्ञा—दूसरी को बुद्धि कहते हैं। और भी स्पष्ट करें तो एक को ज्ञान दूसरे को विज्ञान। एक को धर्म दूसरे को कर्म कहने से ही बस्तु स्थिति समझी जा सकती है। भ्रमवश यह समझा जाता रहा कि इन दोनों का स्वरूप तथा कार्य क्षेत्र पृथक्-पृथक् हैं। पर सही बात यह है कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। यदि उन्हें असंबद्ध होने दिया जाय तो स्थिति बहुत ही विद्रूप हो जायगी।

गड़बड़ तब पड़ती है जब दोनों के कार्यक्षेत्र की भिन्नता पहचानने में भूल की जाती है और एक से दूसरे का काम लेने काप्रयास किया जाता है। मनुष्य और पशु एक दूसरे के पूरक हैं। पारस्परिक सहयोग से दोनों ही लाभान्वित होते हैं, किन्तु यदि मनुष्य का कार्य पशु को सौंपा जाय और पशु के कार्य मनुष्य से लिए जाँय तो इसका परिणाम अवांछनीय ही होगा। धर्म का लक्ष्य हैं अन्तरात्मा में सन्निहित सत्प्रवृत्तियों का मनोविज्ञान सम्मत पद्धति से इतना समुन्नत करना कि वे व्यावहारिक जीवन में ओत-प्रोत हो सकें। विज्ञान का लक्ष्य है प्रकृतिगत शक्तियों तथा पदार्थों के स्वरूप तथा क्रिया-कलाप की इतनी जानकारी देना कि उनका समुचित लाभ मादवी सुख-सुविधाओं की अभिवृद्धि के लिए किया जा सके। दोनों का कार्य क्षेत्र प्रत्यक्षतः अलग हैं, जिसमें एक दूसरे को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। फिर भी वे दोनों एक दूसरे के पूरक हैं क्योंकि जीवन आत्मिक एवं भौतिक दोनों प्रकार के तत्वों से मिलकर बना है। जड़ चेतन के समन्वय से ही जीवन का स्वरूप प्रत्यक्ष होता है। इतने पर भी यह अन्तर रखना ही पड़ेगा कि हृदय और मस्तिष्क

की तरह दोनों का कार्य क्षेत्र विभक्त हो। एक का कार्य दूसरे पर थोपने की गलती न की जाय। भौतिक तथ्यों की जानकारी में पदार्थ विज्ञान को प्रामाणिक माना जाय और आत्मिक आन्तरिक चिन्तन एवं भावनात्मक प्रसङ्ग में श्रद्धा की आत्मानुभूति को मान्यता दी जाय।

वैज्ञानिक और आत्मवादी दोनों ही अन्तर्ज्ञान से प्रकाश की किरणें प्राप्त करते रहे हैं। आविष्कार को अकारण ही ऐसी सूझ उठी जिसके सहारे वे अपनी खोज का आधार खड़ा कर सके। पूर्व श्रृंखला न होने पर भी इस प्रकार का अनायास अन्तर्बोध यही सिद्ध करता है कि मानवी चेतना के पीछे कोई अलौकिक प्रवाह काम कर रहा था, जिसे अप्रकट को प्रकट करने की उतावली थी। विज्ञान की प्रधान धाराओं के मूल आविष्कर्ता इस तथ्य से सहमत हैं कि उन्हें अपने विषय की सूझ-बूझ अन्त करण ही प्रस्फुटित हुई। यदि उस प्रकाश किरण के लिये कुछ साधारण से कारण भी थे तो भी उनमें कोई नवीनता नहीं थी। वह सब कुछ पहले से ही होता चला आया था। उमङ्ग उठकर ठप्प नहीं वरन् उसने एक के बाद एक कदम आगे बढ़ने का सहारा दिया और सूझ-बूझ की उस श्रृंखला में एक के बाद एक कड़ी जुड़ती चली गई। यदि ऐसा न होता तो शोध को उठी हुई इच्छा मार्ग न मिलने पर कुण्ठित ही रह जाती।

विज्ञान का क्षेत्र हो अथवा धर्म का, उसमें मंथन करके कुछ रत्न प्राप्त कर सकने का श्रेय मनुष्य की रहस्यमय प्रवृत्तियों को ही है। वे स्वरूप मात्रा में कहीं भी पाई जा सकती है पर यदि किसी प्रकार उनको प्रखर किया जा सके तो उनकी परिणति असाधारण उपलब्धियों के रूप में ही होती है। इसी अवलम्बन के सहारे सामान्य ज्ञान को महद्ज्ञान और सामान्य व्यक्तित्व को महामानव बनने का श्रेय सौभाग्य प्राप्त होता है।

विज्ञान और धर्म की प्रगति में जो तथ्य सहायक रहे हैं उनमें से कुछ प्रमुख युग्म इस प्रकार हैं--(१) विवेक और औचित्य (२)

एवं श्रद्धा (३) तर्क एवं आशा (४) जिज्ञासा और जानकारी (५) सभ्यता और शालीनता (६) प्रेम और वफादारी (७) त्याग और सेवा (८) लगन और निष्ठा (९) धैर्य और साहस (१०) पुरुषार्थ एवं मनोयोग। इनका अवलम्बन लेकर चलने वाले व्यक्तित्व इस संसार में कुछ बहुमुल्य रत्न प्राप्त करके ही रहते हैं। धर्म हो अथवा विज्ञान हर क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियों का श्रेय अंततः कुछ विशिष्ठ सत्प्रवृत्तियों पर ही निर्भर सिद्ध होता है। कहना न होगा कि वह अन्तःस्फुरणा जो प्रसुप्त दिव्य प्रवृत्तियों को जागृत कर सके किसी अज्ञात संकेत से ही उद्भूत होती हैं।

दार्शनिक रैक्वे कहते हैं—मनुष्य ने विज्ञान द्वारा प्रकृति के अन्तराल को समझा है और धर्म के द्वारा अपनी महानता काआभास पाया है।

श्री जेविन्स का कथन है कि जादू-टोने चमत्कार तथा रहस्य-वाद के आधार पर जो धर्म अथवा धर्माधिकारी खड़े हैं उनकी जड़े खोखली हैं। सिद्धान्तों और प्रेरणाओं की दृष्टि से जहाँ खोखलापन होगा वहीं लोगों को आकर्षित करने के लिये ऐसे हथकंडे काम में लाये जायेंगे। धर्म तो अपने आपमें इतना उपयोगी है कि उसका यथार्थ स्वरूप समझने पर वह स्वयं ही एक ऐसा जादू चमत्कार प्रतीत होता है जिसके आधार पर व्यक्तित्व में क्रांतिकारी परिष्कार एवं उसका सत्परिणाम प्रत्यक्ष देखा जा सके।

विज्ञानी रुनेग्लोविश—इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पृथ्वी दो ध्रुवों अथवा शीत ग्रीष्म ऋतु प्रवाह की तरह एक दूसरे से भिन्न दीखते हुए भी धर्म और विज्ञान वस्तुतः एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों में से एक के आधार पर जो भी निष्कर्ष निकाला जायगा वह वस्तुतः अपूर्ण ही रहेगा। पदार्थ में चेतना का अस्तित्व और चेतना को सक्रिय रहने के लिए भौतिक पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। दोनों का समन्वय ही विश्व को वर्तमान स्वरूप प्रदान कर सका है। यदि उन्हें सर्वथा पृथक् कर दिया गया तो अधूरे और भटकाव भरे निष्कर्ष ही हाथ लगेंगे। ॐ

अमर भारत—

चाणक्य

आर्यावर्त के एक विशाल भूभाग पर विदेशियों [यूनानियों] का शासन ब्राह्मण चाणक्य के हृदय में शूल-सा चुभता रहता था। उसने आर्यावर्त के समस्त राजाओं को यूनानियों के विरुद्ध एक-संगठन सूत्र में पिरोने का प्रबल प्रयत्न किया, परन्तु विफल रहा। उस दिन उस ब्राह्मण का ब्रह्म-ओज उमड़ पड़ा। उसने अपनी चोटी खोल कर प्रतिज्ञा की, 'आर्यावर्त के समस्त राजाओं को समाप्तकर एक सुदृढ़ केन्द्रीय राजसत्ता स्थापन करके और यूनानियों को बाहर निकाल कर ही पुनः इस चोटी में गाँठ लगाऊँगा।

विप्र चाणक्य के चोटी के बाल पवन-वेग से ध्वजवत् इधर-उधर फहरा रहे थे। उसके गौर नग्न शरीर पर शुभ्र यज्ञोपवीत असि की धारवत् चमक रहा था। नग्न कार्य, नग्न शिर, नग्न पाद, रिक्त हस्त, वह अलक्ष्य-सा जङ्गल को चीरता हुआ चला जा रहा था। सहसा उसे एक बालक बकरियाँ चराता हुआ दिखाई दिया।

अद्भुत ब्राह्मण की ओर देखकर विनोदपूर्ण मुद्रा में बालक के मुख से निकला, 'प्रणाम।'

'जय हो', अनायास ही ब्राह्मण के मुख से भी निकल गया। 'बच्चे, तेरा टाम ?' 'चन्द्र।' 'तेरा पिता ?' 'वह गडरिया।'

'तू गडरिया का पुत्र है ?'

'हाँ।' 'झूंठ।' 'झूंठ नहीं, सत्य।'

बालक तनकर खड़ा होगया। चाणक्य विस्मित होकर विचारने लगा, 'बालक की आकृति राजनीतिज्ञ महामंत्री मौर्य की आकृति से मिलती-जुलती है। परन्तु उस नीच मगधराज ने मौर्य और उसके सम्पूर्ण वंश का लगभग आठ वर्ष पूर्व वध करा दिया था। यहाँ कोई रहस्य है।'

चाणक्य विद्युत-वेग से गडरिये के पास पहुँचा। वह बालक परम राजनीतिज्ञ मौर्य का एकमात्र पुत्र है, यह जानकर चाणक्य

हर्षातिरेक से उछल पड़ा। गडरिये को समझा-बुझाकर चाणक्य बालक चन्द्रगुप्त मौर्य को अपने साथ ले गया और गंगा के तीर उस गहन वन में बालक का पालन-पोषण और शिक्षण किया। बीस वर्ष की आयु प्राप्त करने पर चन्द्र सोलह कलाओं से युक्त, अनुपम शूर और पटु राजनीतिज्ञ बन गया। उसका रूप-लावण्य बड़ा विमोहक और चित्ताकर्षक था। मौर्य के सनिष्ठ [वफादार] सरदारों तथा राजपुरुषों को बुलाकर चाणक्य ने उन्हें चन्द्र का परिचय दिया। पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र के समान कलान्वित चन्द्र के दर्शन करके सहसा उनके मुख से निकला, 'चन्द्रगुप्त मौर्य की जय।'

[जिनके आचरण में 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहितः' यह वैदिक ऋचा साकार हो उठी थी।]

पाटलिपुत्र के राजभवन में दरबार लगा हुआ था। पच्चीस वर्ष का युवक सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य सिंहासन पर विराज रहा था। वाम पार्श्व में सैल्यूकस की पुत्री सम्राज्ञी के रूप में सुशोभित थी। चाणक्य ने अपने हाथ से चन्द्र के शिर पर राजमुकुट रखकर अपनी चोटी में गाँठ लगाई और कहा, 'यूनानी सेनापति सेल्यूकस यूनान की सेनासहित यूनान चला गया है। आर्यावर्त आज विदेशियों के त्रास से सर्वथा मुक्त है। देश के समस्त राजाओं ने सम्राट् चन्द्र की माण्डलिकता स्वीकार कर ली है।' मेरा कार्य पूरा हो गया है। चन्द्र चिरजीवी हो।

सम्राट् खड़ा हुआ, महर्षि चाणक्य को राजगुरु घोषित करने के लिये, परन्तु दरबार-भवन में चाणक्य दिखाई न दिये।

कुछ मास पश्चात् गुप्तचरों ने सम्राट चन्द्र को सूचना दी कि महर्षि चाणक्य गंगा के तीर, अमुक शिखर पर निवास करते हैं और प्रायः ध्यान मग्न रहते हैं।

सम्राट चन्द्र एक प्रातः अपने मन्त्रियों तथा सामन्तों सहित महर्षि चाणक्य की कुटीर पर पहुँचे, तो देखा, वे समाधिस्थ हैं।

पर्याप्त दिन चढ़े समाधि से निवृत्त हो महर्षि ने अपने नेत्र खोले, तो समाट चन्द्र तथा उनके साथी महर्षि को प्रणाम कर उनके अभिमुख एक पंक्ति में बैठ गये।

'ऋषे ! मैं आपके चरणों में यह निवेदन करने आया हूँ कि आप अपने चन्द्र के साम्राज्य के राजगुरु पद को सुशोभित करें और राजधानी के समीप उस सुरम्य में विराजें। यह साम्राज्य आप ही की सनीति से सम्पादित हुआ है और आप ही की सुसम्मति से मैं सुचारुता के साथ इसका संचालन कर सकूंगा, सम्राट् चन्द्र ने निवेदन किया।

'तुम चिरंजीवी होओ, चन्द्र ! और चिरंस्थायी हो तुम्हारा साम्राज्य ! केवल अपनी पावन मातृमही को विदेशियों के शासन से मुक्त करने के लिये ही यह ब्राह्मण राजप्रपंच में पड़ा था, चन्द्र ! और यदि मेरे जीते-जी मेरी मातृभूमि पर पुनः कभी संकट आया तो मैं फिर संघर्ष में कूद पड़ूगा। अन्यथा मैं पूर्व भी यहीं रहा करता था और भविष्य में भी यही रहूँगा। ब्राह्मण का स्वाभाविक निवास स्थान तो सरित् के तीर गिरिशिखर ही है। कोई राज-समस्या हो तो बोलो, मैं उसका समाधान कर दूं। अन्यथा जाओ, वत्स, अपना कार्य करो।'

'क्या आप अपनी कोई सेवा बतायेंगे, गुरो ?

'राष्ट्र का रक्षण और प्रजा की सेवा करो, यही मेरी सेवा है, सम्राट् ! इस शरीर को किसी की सेवाओं की कोई आवश्यकता नहीं है, इतना कहकर चाणक्य द्रुत गति से यज्ञार्थ समिधायें चयन करने के लिये चले गये।

अपनी राजधानी को जाते हुए सम्राट् साथियों से बोले, 'आज मेरी समझ में आया है कि ब्राह्मण किसे कहते हैं और ब्राह्मण को सर्वपूज्य क्यों माना जाता है।'

ॐ

जीवन जीना एक श्रेष्ठ कला

एक कुशल चित्रकार साधारण रंगों के समन्वय से जब चित्र बनाता है, जिसमें जीवन बोल रहा जान पड़ता है, तब हम आश्चर्य मुग्ध हो उठते है। एक संगीतज्ञ शब्दों के भीतर छिपे अनन्त माधुर्य, आनन्द और रहस्य को उद्‌भासित कर देता है। अव्यक्त सौन्दर्य को व्यक्त करना अदृश्य शक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करना और अप्रकट रसों को प्रकट करना ही कला का लक्ष्य है। जीवन भी एक कला है। महात्मा गान्धी के शब्दों में तो—'जीवन समस्त कलाओं से श्रेष्ठ है, जो अच्छी तरह जीना जानता है, वही सच्चा कलाकार है।

जैसे समस्त कलाऐं अदृश्य सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करती हैं, वैसे ही जीवन सत्य, शिव और सुन्दर के प्रच्छन्न रहस्यों की अनुभूति और प्रकाशन करता है। जैसे चित्रकार को रङ्ग और कूची, मूर्तिकार को पत्थर और छेनी, संगीतकार का शब्द, सुर, ताल और लय के साधन प्राप्त हैं, वैसे ही मनुष्य को जीवन-कला के चित्रण और प्रकाशन के लिए शरीर, मन और बुद्धि की समृद्धियाँ प्राप्त हैं।

जो अच्छी तरह जीना जानता है, वही सच्चा कलाकार है। हमारी सम्पूर्ण विद्या, हमारा ज्ञान, हमारा धन, हमारे अगणित दावे सब निरर्थक हैं, यदि हमें सुव्यवस्थित ढंग से जीना नहीं आया, यदि हमें जीवन की कला नहीं आई। क्या केवल जन्म लेना, पेट भरना और एक दिन मर जाना ही जीवन है? क्या अपनी हजारों वर्ष की सभ्यता और संस्कृति की यात्रा में मनुष्य ने इतना ही सीखा है? जिस जीवन में अच्छी तरह जीने की क्षमता नहीं, वह जीवन नहीं। अच्छी तरह जीना क्या है? शरीर, मन, बुद्धि और इन सबके द्वारा आत्मा की शक्तियों का अनुभव और उनका अपने तथा जगत के कल्याण के लिए सदुपयोग।

शरीर को लें तो अन्तिम काल तक वह शक्तिमान और समर्थ

रहे, श्रेष्ठ कार्यों में उसका उपयोग हो, थकावट और आलस्य पास न फटके, निरोग रहे, रोग से लड़ने और उस पर विजय पाने की शक्ति से भरा रहे। मस्तिष्क सक्षम, आँख प्रकाश से भरी, मुख तेज पूर्ण, दाँत दृढ़ और स्वच्छ जिव्हा मितभाषी और मधुर बोलने वाली उभरा हुआ सीना, विकसित पुट्ठेदार बाँहें तथा सबल हाथ, शक्तिमान और सब कुछ हजम करने वाला पेट तथा मजबूत पाँव, जो जीवन की लम्बी यात्रा के बोझ से विचलित न हों। यह शरीर को शच्छा रखना है।

मन वह: जिसमें अच्छे विचार आयें: ऊंचे आदर्श की कल्पना हो जो जीवन को उचित मार्ग पर चलनेकी दृढ़ता प्रदान करे,जिसमें स्वार्थ की भावना इतनी प्रबल न हो जाय कि दूसरों के हित और कल्याण का ध्यान न रहे, जो शरीर में तरंगें बहाये, जिसमें ईर्ष्या, द्वेष लोभ अन्याय का मैल न हो। यह हैं स्वस्थ मन के लक्षण।

बुद्धि वह, जो विचारों को लक्ष्य की ओर संचारित करे, जो बुराई-भलाई का विश्लेषण कर मन को श्रेय की ओर प्रेरित करे जिसमें समस्याओं के मूल में पैठने की सूझ-बूझ हो, जो जीवन को अन्धकार से निकालकर प्रकाश के मार्ग पर अग्रसर करे। जो अपने और दूसरों के हितों में समन्वय साधे और व्यक्ति तथा समाज के पारस्परिक सम्बन्धों का उचित ढङ्ग से विकास करे।

स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन और श्रेष्ठ बुद्धि का मस्तिष्क तीनों का जब सहयोग होता है, तब जीवन-कला प्रकट होती है, तब कुत्सित और भद्दी वस्तुयें सुन्दर लगने लगती हैं, स्वार्थ का स्वस्थ त्याग लेता हैं, अनुदार दृष्टि में उदारता का भाव उत्पन्न होता है दूसरों के प्रति हम अधिक सहिष्णु, अधिक सहानुभूति पूर्ण एवं अधिक आत्मीय बन जाते हैं।

आधुनिक जीवन का सन्तुलन बिगड़ जाने का कारण यह है कि मानव-प्रकृति का भौतिक पक्ष उसके नैतिक पक्ष से कहीं अधिक विकसित हो गया है। जीवन के भौतिक क्षेत्रों में जो आश्चर्यजनक प्रगति और क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गये है, नैतिक क्षेत्रों में उनके

सयान्तर प्रगति और परिवर्तन नहीं हो पाये हैं। दोनों के बीच एक एक अन्तर एक खाई आ गई है और यह खाई निरन्तर बढ़ती ही चली जारही है। पिछले सौ वर्षों में मनुष्य की बौद्धिक शक्तियाँ अत्यन्त वेग से बढ़ी हैं परन्तु आध्यात्मिक विकास के क्षेत्र में मनुष्य बहुत पिछड़ गया है—इतना कि उसमें एक प्रबल निराशा विवशता और विफलता की भावना घर कर गई है।

आज मनुष्य पर धन-संचय की धुन सवार हैं। मनुष्य में अपनी इच्छाओं एवं उपभोगों पर नियन्त्रण रखने की—सयम की शक्ति क्षीण हो गई है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने शारीरिक भोग-विलासों एवं स्यार्थ भावनाओं पर अंकुश रखने तथा लोक-मंगल के लिए त्याग-भावना एवं आत्मोत्सर्ग की भावना, को विकसित कर नये स्वर्ण युग का निर्माण करें। हमें नूतन जगत् के लिए नूतन मनुष्य चाहिए वे जो जीवन की चुनौती का उत्तर देने को तत्पर हों, वे जो नूतन युग के निर्माण के लिए नूतन जीवन दृष्टि धारण करें और अभी तक चली आ रही जीवन की अन्ध परम्परा का त्याग कर नया वास्तविक विशुद्ध जीवन बिताने का निश्चय करें। जब तक व्यक्तियों का जीवन शुद्ध न होगा और उनमें आत्म शोधन, आत्म परिष्कार और आत्मोत्सर्ग का दृढ़ संकल्प एवं संस्कार उद्भुत और विकसित न होगा, तब तक नये स्वर्णिम युग का अवतरण कैसे सम्भव हो सकता है?

मानव-जीवन के गहरे तल में असीम शक्तियाँ पड़ी हुई हैं। हमारा शरीर मन, बुद्धि अस्वस्थ है। इसलिये जीयन की सच्ची कला का उदय नहीं हो पा रहा है। जिस दिन हम जीर्ण जीवन तथा विचार प्रणाली के बन्धनों से अपने मानस को मुक्त करके एक सर्वथा नवीन युग के निर्माण के लिये, नीव देने के रूप में नवीन जीवन-दृष्टि ग्रहण करेंगे और एक नये जीवन के बिताने का निश्चय ही नहीं, आरम्भ कर देंगे, उस दिन हमें एक नूतन मुक्ति, एक नूतन विजय, एक नवीन साहस, एक नवीन स्फूर्ति, और नई शक्ति का अनौखा अनिर्वचनीय आनन्द अनुभव होगा। ॐ

भाग्य का खेल –राजेश कुमार आर्य, आट्टा, पानीपत हरि०)

"माँ मैं अपने पिताजी को कब देखूँगा ? कितना प्यारा होगा मेरा पिता ?' यह कहते-कहते वह उदास हो जाता और माँ उसकी बात सुनकर अपने अतीत की यादों में खो जाती। एक उदासी का वातावरण छा जाता। माँ को मौन देखकर बालक फिर उदास शान्ति को तोड़ते हुए पूछता—"माँ, तुम क्यों नहीं बताती कि पिता जी को मैं कब देखूंगा ?"

उसका पिता बर्षों पहले जब वह माँ के गर्भ में ही श्यन कर रहा था, उसकी माँ को अकेली छोड़कर कहीं चला गया था। परन्तु अभी तक वापिस नहीं आया। माँ पुत्र का स्नेह पूर्वक गाढ़ आलिङ्गन कर अपने नयनों से कुछ आँसू जमीन पर गिराकर अपने दुःख के बोझ को हल्का करती हुई कहती—'पुत्र ! यदि भगवान् ने चाहा तो तेरा पिता के साथ अवश्य ही मिलन होगा।'

वर्षों बीत गए अब बालक जवान हो गया। वह अपनी माँ की आज्ञा राजा की सेना में परन्तु पिता से मिलन की इच्छा अब भी कम नहीं हुई। जब वह अपने पिता के विषय में सोचता तो उसका चेहरा उदास हो जाता। वह प्रभु से प्रार्थना करता—"हे भगवान् ! क्या मैं अपने पिता के दर्शन कर सकूंगा ? प्रभो ! मुझे मेरे पिता के दर्शन करा दे, जो मेरे जन्म से पहले ही कहीं चले गये थे और आज तक···· ····(रोने लगता है) वापिस नहीं आए। मेरे ऐसे कौन से दुष्कर्म थे जिनके कारण मैं अपने पिता के दर्शन तक भी न कर सका।"

परिवार में दो प्राणी माँ और पुत्र थे। घर की आर्थिक स्थिति भी अच्छी थी। परन्तु पिता का सूनापन उसे सदा खाए रहता था। कभी जंगल में कभी नदी के तट पर एकान्त में वह केवल पिता के लिये ही तड़पता रहता था।

परन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था। कुछ वर्ष ही बीते

थे कि पड़ोसी राजा ने राज्य पर आक्रमण कर दिया। वह अपनी सेना तैयार करके युद्ध में शत्रु को परास्त करने के लिये डट गया। दोनों ओर से तीरों की वर्षा होने लगी तलवारे खनकने लगी, भाले चमचमाने लगे। क्षण भर में ही लाशों के ढेर लग गए। युद्ध में घायल सैनिकों की चित्कारों से आकाश गुंजाममान हो रहा था।

दो महान शक्तिशाली योद्धा एक द्वन्द्व युद्ध में टकराए। दोनों में भयंकर युद्ध होने लगा। पहले तलवारों से युद्ध हुआ। फिर भाले निकल गये। दोनों ही वीर अद्वितीय थे। कोई हारने का नाम नहीं लेता था। दोनों के शरीरों पर घाव हो गए, उनको सांस उखड़ने लगी। अचावक एक योद्धा दूसरे पर काबू पा लेता है और अपना भाला उसके पार्श्व में भार देता है। भाला लगते ही वह योद्धा भूमि पर गिर पड़ता है। विधाता की सृष्टि में रिश्तों का अपना ही आकर्षण होता है। जिसके कारण अनजान होने पर भी सगे सम्बन्धि स्वयं ही एक दूसरे का परिचय जानने के लिये उत्सुक रहते हैं।

नीचे जमीन पर मरणासन्न पड़े योद्धा ने कराह भरी तो दूसरे योद्धा से वह सहन नहीं हुई और वह अपना भाला जमीन पर रखकर उसके पास बैठकर उसका परिचय तथा अन्तिम इच्छा पूछता है। घायल सैनिक पीड़ा से कराह रहा है परन्तु फिर भी संक्षेप में अपना परिचय देता है और अपनी अन्तिम इच्छा पिता से मिलने की बताता है। वह अपनी माँ से सुना हुआ अपने पिता का नाम रूस्तम बताता है। यह सुनकर दूसरा योद्धा आश्चर्य चकित नेत्रों से उसकी ओर देखता है और बार-बार उससे उसके पिता का नाम पूछता है। अन्त में रोते हुए रूँधे कण्ठ से लड़खड़ाती जीभ को बार-बार प्रयत्न पूर्वक उठाकर कहता है—'मैं ही तेरा अभागा पिता हूँ। पुत्र मैं ही तेरा अभागा पिता हूँ।" यह सुनकर सोहराब की आँखें खुशी से चमक उठती हैं। वह अपने पीड़ा को भुलाकर

प्रसन्न वदन से अपने पिता के मुख को देखता है। उसके चातक रूपी नयन अपने पिता के दर्शनों के प्यासे आज जीभर कर उनके दर्शनों का पान कर रहे हैं। जब रूस्तम बोलता है तो सोहराब उसकी वाणी सुनकर बड़ा खुश होता है।

पीड़ा से राहत पाने के लिये जब सोहराब अपने पार्श्व में लगे भाले को निकालता है तो रक्त का झरना फूट पड़ता है, भूमि रक्त रंजित हो जाती है। रूस्तम के लिये यह सब असह्य हो जाता है। वह पागलों की भांति विलाप करता हुआ आत्महत्या करने लगता है, परन्तु सोहराब उसे मनाकर देता है। वह कहता है— पिता जी ! आप बोलते रहिये, मैं आपकी वाणी सुनना चाहता हूँ।"

आज सोहराब मृत्यु के द्वार पर खड़ा होकर मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है, और पीड़ित हो रहा है। परन्तु आज ही उसे जीवन का सच्चा आनन्द प्राप्त हो रहा है। पूरा जीवन वह पिता के लिये तड़पता रहा। आज उसे वह मिल ही गया।

वाह रे भाग्य ! पिता पुत्र जीवन में केवल एक ही बार मिले और वह भी युद्ध भूमि में। एक दूसरे से मिलने के लिये तड़फते रहे और मिले भी तो मरने मारने के लिये। सोहराब का शरीर बहुत निर्बल हो गया है। उसकी आत्मा अब शिथिल हुए शरीर से मुक्त होना चाहती और उसके शरीर रूपी पिंजरों को छोड़कर निकल जाती है। रूस्तम अपनी पगड़ी उतारकर अपने कलेजे के टुकड़े के ऊपर ढक देता है।

सूर्य से यह दृश्य न देखा गया वह अपनी किरणों को समेट कर अस्ताल की ओर चला जाता है। वायु शान्त हो जाती है, वृक्ष स्तब्ध होकर शोकाकुल हो रहे हैं। रूस्तम अपने आपको शान्त सनेपन से युक्त आकाश के नीचे अकेला अनुभव करता है।

मातृ-मन्दिर **आपके पति का स्वास्थ्य**—आशारानी व्होरा

सुखी दाम्पत्य जीवन, अधिक कार्य कुशलता और समृद्धि के लिए पूरे परिवार का और परिवार के मुखिया का अच्छा स्वास्थ्य पहली शर्त है। पति को स्वादिष्ट व्यंजन बना कर व खिला कर खुश कर देना ही प्रायः भारतीय स्त्रियाँ अधिक जानती हैं, जो गृहिणी अधिक घी, मिर्च मसाले वाले चटखोरदार व्यंजन बनाकर खिलाये वह चतुर गृहिणी है, दूसरी अकुशल। यही नहीं, पति को अधिक खिलाने का आग्रह करना भी उनका एक गुण माना जाता है।

बड़ी बूढ़ियाँ कहेंगी 'अरे बिना घी की उबली सब्जी ! हमने तो ऐसी चीज न कभी पकाई थी, न खाई। आजकल की बहुएं खाना पकाना क्या जानें ! उन्हें तो बस सैर-सपाटे चाहिए," और इन माताओं के लाड़-प्यार में पले पति भला पहले जैसा स्वादिष्ट खाना छोड़ कर पत्नी के हाथ से फीका खाना क्यों खाना पसन्द करेंगे।

इस तरह ठूँस-ठूँसकर खिलाने का नतीजा खतरनाक भी हो सकता है

पर वे भूल जाते हैं कि पुराने जमाने में शुद्ध घी, हरी ताजी सब्जियाँ, दूध मठे और मेवे आदि की बहुतायत तले व भुने भोजन की कमी को दूर कर देती थीं। आज यदि हमें वैसी चीजें कम प्राप्त होती हैं तो यह जरूरी है कि पकाने में उनके तत्व सुरक्षित रहें। समझदार पत्नियाँ समझा बुझाकर शुरू से ही पति को खाने के बारे में अच्छी आदतें डाल सकती हैं। शुरू में प्यार के वशीभूत हो वे उन्हें ग्रहण भी जल्दी कर लेते हैं, पर प्रायः ऐसा होता नहीं। दोनों ओर एक दूसरे को खुश करने की होड़ में पत्नी भी पति की पूर्व पसन्द और उसकी बिगड़ी आदतों को खूब बढ़ावा देती हैं, चाहे बाद में वे नियन्त्रण से बाहर ही क्यों न हो जायें !

अगली स्टेज पर गिलेशिकवे लड़ाई-झगड़े बात-बात पर तनाव शुरू होता है। तब पत्नियाँ झींकती रहती हैं और पति सुनते ही

नहीं। कई बार तो खानपान की आदतें ही झगड़े और पति के स्वास्थ्य की खराबी का कारण बन जाती हैं पर अधिकतर इसका कारण मानसिक दबाव ही होता है। व्यस्त और कार्यशील पति दिन भर का थकामांद घर आकार पहले अपने मानसिक तनाव और शारीरिक थकान को मिटाना चाहता है। स्वास्थ्य के लिये यह बहुत जरूरी है कि दिन भर की थकान के बाद उसे कुछ क्षण शाँति, मनोरंजन और प्यार अपनत्व के मिले।

यदि पत्नी पति के आते ही अपने दिन भर के शिकवों का रोना लेकर बैठ जाएगी तो निश्चय ही वह तनाव कम होने के बढ़ेगा। पत्नी भी दिन भर की थकी और ऊबी हो सकती है और गिलेशिकवे भी उसे पति से ही करने हैं, दोनों को मिलकर ही परिवार की कठिनाइयाँ हल करनी हैं। पर हर बात का समय होता है, यदि पति के आने के समय पत्नी फालतू काम निपटा कर खाली हो जाए, स्वयं तैयार होकर चुस्त व प्रफुल्लित दिखाई दे और उतने समय के लिए बच्चों को उनके मनपन्सद के काम में लगाकर कुछ क्षण एकान्त में पति के साथ बिताने के लिए निकाल ले तो यह कोई बड़ा त्याग नहीं है, स्वयं उसे भी इसमें आनन्द ही मिलेगा। अच्छे मूड में सब बातें सुनीं, सुनाई और हल कर ली जाती हैं और इससे स्वास्थ्य भी ठीक रहता है।

भोजन की कि किस्म, खाने की आदतों के बारे में पत्नी जितनी कुशल होगी, पति का स्वास्थ्य उतना अच्छा रहेगा। पर इसके साथ पति के मन की शांति, स्थिरता और प्रसन्नता भी उतनीही आवश्यक है। संतुलित भोजन और संतुलित मन ही मिलकर सुन्दर स्वास्थ्य का त्रिकोण बनाते हैं। पत्नी का व्यवहार पति की खानपान सम्बन्धी आदतों में भी सुन्दर कर सकता है और उसका मानसिक सतुलन बनाये रखने में भी सहायक हो सकता है। उसकी दिनचर्या में काम और आराम का उचित संतुलन हो, उसका खानपान उसके अनुकूल

हो और उसका मन अपने व्यवसाव व परिवार दोनों में उचित संतुलिन स्थापित करने में सक्षम हो तो वह स्वस्थ रह सकता है, प्रसन्न रहकर पत्नी व परिवार की खुशी को बढ़ा सकता है और अधिक कार्यक्षमता जुटा कर परिवार को समृद्ध भी बना सकता है और यह बहुत कुछ पत्नियों के ही हाथ में है।

परिवार व पति के अच्छे स्वास्थ्य के लिए हर पत्नी को संतुलित भोजन का ज्ञान तो होना ही चाहिए। उसे व्यवहार कुशल भी होना चाहिए तभी वह पति को प्रसन्न रख सकती है और तभी उसकी खानपान या दूसरी अनियमिताओं में सुधार ला सकती है। अधिक वजन बढ़ाना अनेक बीमारियों को जन्म देना है।

मानसिक रिक्तता से बढ़ी भूख का इलाज भी पत्नी कर सकती है और डाक्टरी निर्देशों का पालन भी पत्नी ही करवा सकती है। यदि पति किसी रोग से पीड़ित है तब तो यह देखभाल की उसकी जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। मोह या आदतों के वश होकर स्वास्थ्य और खानपान के नियमों का उल्लंघन न करें।

अधिक धूम्रपान और शराब पीने की आदत कम करने या छुड़वाने के लिए आजकल हर बड़े अस्पताल में सलाह दी जाती है, वहाँ से सलाह लें या अपने डाक्टर से फिर वैसा ही करें। पति न मानें तो प्यार से, चतुराई से मनवाएं और उसे विश्वास दिलायें कि आप उसकी भलाई के लिए ही ऐसा कर रही हैं,यह सावधानी वर्तना तो बहुत ही आवश्यक है वरना पति आपके आदेशों को सहन नहीं करेगा और आपके संरक्षण में बन्धन अनुभव करेगा।

पति की स्वतान्त्रता और आपकी की रक्षा का ध्यान रखते हुए ही आप उसके स्वास्थ्य की जिम्मेदारी ठीक तरह से उठा सकती हैं, इस बात को कभी मत भूलिये अन्यथा परिणाम उल्टा हो सकता है।

आर्य कुमार स्तम्भ— मानवता के ये दिव्य रूप !

एक बार भारत-मंत्री श्री बेजबुड वन इंगलैंड से भारत आये। उन्होंने भारत के अग्रणी राजनीतिक नेताओं को बुलाया। केवल दो को छोड़ कर अन्य सभी नेतागण अंगरेजी वेशभूषा में भारत-मंत्री से मिलने आये। स्वदेशी पोशाक में दो ही नेता थे—लोकमान्य तिलक और महात्मा गाँधी शिष्टाचार के अनुसार श्री वेजबुड ने सभी नेताओं से हाथ मिलाया, परन्तु उन्होंने वार्त्तालाप केवल भारतीय वेशभूषा वाले नेताओं से किया।

श्री वेजबुड ने लोकमान्य तिलक से पूछा, 'आप औपनियेशिक स्वराज्य चाहते हैं। क्या आप मानते हैं कि ऐसा स्वराज्य मिलने पर आप सुखी हो जायेंगे ?'

लोकमान्य ने कहा, 'आज हमें किसी बात की चिन्ता नहीं है ! भारत की रक्षा आपलोग करते हैं, शासन व्यवस्था आप चलाते हैं। स्वराज्य मिलने पर हमारे दुःखों का प्रारम्भ होगा, किन्तु उसमें हम आनन्द मनायेंगे। विघ्न-बाधाएं आयेंगी, उन्हें दूर करने के लिए हमारा पुरुषार्थ प्रबुद्ध होगा। हम भूल करेंगे। उन्हें सुधारना सीखेंगे और इस प्रकार हमारा पुनर्निर्माण होगा। हमें तो ये सब कठिनाइयाँ ही चाहिएं।'

एक फ्रांसीसी सैनिक स्कूल में कोर्सिका टापू से आया एक ठिगना और निस्तेज—सा लड़का प्रविष्ट हुआ। इस विद्यालय में उच्च श्रेणी के लोगों के बालक ही शिक्षा पाते थे। इस बालक को सीधा सादा, ग्रामीण ढङ्ग देख कर अन्य बालक उसका उपहास करने लगे। अध्यापक ने आगंतुक बालक का नाम-धाम पूछा। बालक ने कोर्सिकन उच्चारण में कहा—नेपोलियन ! सुनकर कक्षा के बालक जोर से हँस उठे। कुछ उसको चिढ़ाने भी लगे। कोर्सिकन बालक अलग-अलग और कुछ मुर्झाया-सा रहता।

विद्यालय का अनुशासन बहुत कठोर था। एक बार एक छोटी-सी भूल के कारण नेपोलियन दण्ड-योग्य माना गया। उसे घुटने के बल बैठ कर भोजन करने की सजा दी गयी।

शर्मीले और संकोचशील नेपोलियन के मुख पर दृढ़ता की रेखा चमक उठी। उसने धीर-गम्भीर गर्जना के साथ कहा, "मैं घुटने झुका कर भोजन हर्गिज नहीं करूंगा। मेरे परिवार में कोई भी भगवान के सिवा और किसी के आगे घुटने नहीं झुकाता।'

आजादी की लड़ाई के दिनों की बात है। विनोबाजी जेल में गये और जेल आश्रम के रूप में परिवर्तित होने लगी। उन दिनों प्रत्येक कैदी को पैंतीस पौंड अनाज पीसना पड़ता था। इसमें विनोबाजी ने परिवर्तन कराया। मात्रा इक्कीस पौंड निश्चित हुई और प्रत्येक कैदी के लिए इक्कीस पौंड की जगह औसतन इक्कीस पौंड का हिसाब ठहराया गया। सब अपनी क्षमता के अनुसार पिसाई करें, इस प्रकार आश्रम के ढङ्ग की व्यवस्था नियत हुई। विनोबाजी नियमित रूप से इक्कीस पौंड अनाज पीसते थे।

एक दिन जेलर का मिजाज कुछ बिगड़ गया। उसने सबके लिए लाल मिर्च वाली तीखी दाल बनवायी। विनोवा जी वर्षों से मिर्च छोड़े हुए थे। इसलिए तीखी दाल खाते समय उनकी आँख, नाक से पानी बह रहा था। पर कोई शिकवा नहीं! जेलर आया और कहने लगा, 'अरे, विनोबाजी यह क्या?'

'आपकी भगवती मिर्चादेवी का प्रसाद! 'पर आपकी दाल में मिर्च डालने की बात मैं ने नहीं कही थी।'

'जो सबके लिए, सो मेरे लिए!' और अगले ही दिन से दो प्रकार की रसोई बनाने की आज्ञा हो गयी—एक मिर्च वाली और दूसरी बिना मिर्च की।

—❀—

अपनी कमाई—सदा काम आई

सम्राट् जनमेजय प्रति माह कुछ समय राज्य में यह देखने के लिए भ्रमण किया करते थे कि उनकी प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं। विकास की जो योजनायें क्रियान्वित की जाती हैं, उनका परिपालन होता है या नहीं ? उनका लाभ नागरिकों को मिलता है या नहीं।

वे एक गाँव से गुजर रहे थे। छिपे वेश में थे, इसलिए कोई पहिचान न सका। एक जगह लड़के खेल खेल रहे थे। एक लड़का उनमें शासक बनकर बैठा था। सभासद बने लड़के सामने बैठे थे। शासक का अभिनय करने वाला लड़का जिसका नाम कुलेश था, खड़ा सभासदों को व्याख्यान दे रहा था—'सभासदो ! जिस राज्य के कर्मचारी गण वैभव विलास में डूबे रहते हैं, उनका राजा कितना ही नेक और प्रजावत्सल क्यों न हो उस राज्य की प्रजा सुखी नहीं रहती। मैं चाहता हूँ जो भूल जनमेजय के राज्याधिकारी कर रहे हैं वह आप लोग न करें, ताकि मेरी प्रजा असन्तुष्ट न हो। तुम सबको वैभव विलास का जीवन छोड़कर आदर्श जीवन जीना चाहिए। जो ऐसा नहीं कर सकता वह अभी शासन सेवा से अलग हो जाये।

सभासद तो अलग न हुए पर बालक की यह प्रतिभा उसे हो वहाँ से अवश्य खीच ले गई। जनमेजय उससे बहुत प्रभावित हुए और उसे ले जाकर महा मन्त्री बना दिया। कुलेश युवक था तो भी वह बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से राज्य कार्यों में सहयोग देने लगा। सामान्य प्रजा से उठकर जब वह महामंत्री बनने चला था, तब उसके पास एक कुदाली, लाठी और एक उत्तरीय वस्त्र (अंगोछा) के अतिरिक्त कुछ नहीं था, वह इन्हें अपने साथ ही लेता गया था।

उसके प्रधान मन्त्रित्व काल में अन्य मन्त्रियों, सामन्तों एवं

राज्य कर्मचारियों के लिए एक आचार संहिता बनाई गई जिसके अनुसार प्रत्येक पदाधिकारी को दस घण्टे अनिवार्य रूप से कार्य करना पड़ता था। अतिरिक्त आय के कोष बन्द कर दिये गये। इससे बचा बहुत सा धन प्रजा की भलाई में लगने लगा। सारी प्रजा में खुशहाली छा गई। जनमेजय कुलेश के आदर्श प्रबन्ध से बड़े प्रसन्न हुए।

पर शेष सभासद जिनकी आय व विलासितापूर्ण जीवन को बट्टा लगा था महामन्त्री कुलेश से जल उठे और उसे अपदस्थ करने का षड्यन्त्र रचने लगे।

उन्हें किसी तरह पता चल गया कि महामन्त्री के निवास में एक कक्ष ऐसा भी है जहाँ वह किसी भी व्यक्ति को जाने नहीं देता। जब वह दिन भर के काम से लौटता है तब स्वयं ही कुछ देर उसमें एकान्तवास करता है।

सभासदों ने इस रहस्य को लेकर ही जनमेजय के कान भर दिये कि कुलेश ने बहुत सी सम्पत्ति अवैध एकत्रित करली है। महाराज उनके कहने में आ गये। अतएव जाँच का निश्चय कर एक दिन वे स्वयं सैनिकों सहित कुलेश के निवास पर पहुँचे। सब ओर घूमकर देखा पर महाराज को सम्पत्ति के नाम पर कुछ भी नहीं दीखा। तभी उनकी दृष्टि उस कमरे में गई। वे समझे कुलेश निश्चय ही अपनी कमाई इसमें रखता है।

महाराज ने पूछा—'कलेश ! तुम इस कक्ष में एकान्त में क्या किया करते थे ?' इनकी पूजा महाराज ! उसने उत्तर दिया। कुदाली मुझे सदैव परिश्रम की प्रेरणा देती थी और लाठी स्वजनों की सुरक्षा की। उत्तरीय वस्त्र की पूजा मैं इसलिए करता हूँ कि घर हो या बाहर यही बिछौना मेरे लिये पर्याप्त है।' यह कहकर कुलेश ने तीनों वस्तुएं उठाली और वहाँ से फिर उसी ग्रामीण जीवन में चला आया।

महाराज ! जनमेजय अभासदों के षड्यन्त्र से दुःखी होकर हाथ मलते रह गये। यही दुःख अब भी बना हुआ है। वह तब दूर हो जब कुलेश जैसे आदर्श राज्य कर्मचारी देश में उत्पन्न हों। ॐ

जीवन का महत्व समझें और उसका सदुपयोग करें

मनुष्य विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। ईश्वर ने उसे अन्य जीवों की तुलना में बहुत अधिक शक्तियाँ तथा सुख सुविधाएं दी हैं इसका एकमात्र कारण यही है कि ईश्वर चाहता है हम आदर्शनिष्ठ जीवन जीयें, अपनी शक्तियों का सदुपयोग करें। जिस मनुष्य की रचना में परमात्मा ने अपने समस्त स्नेह और ममत्व को उंडेल दिया है, जिसके निर्माण में उसने अपना पूरा क्रिया-कौशल दिखाया है – वह भी यदि पशुओं के समान शिश्नोदर जीवन जीता है तो इसे 'महती विनिष्ट ही कहा जायेगा।'

लाखों योनियों में भटकने के बाद प्राप्त हुई इस नरदेह को पाकर हमें इसके गौरव के अनुरूप ही चलना चाहिए। यह शोभा नहीं देता कि हम मनुष्यता को कलकित करने वाले कुकर्म करें। तुच्छ विषय-भोगों में फसकर अपने जीवन लक्ष्य को भुला बैठें। हँस नीर-क्षीर विवेकी होता है, हमें भी न्याय और अन्याय का अन्तर कर नीति तथा न्याय के पथ का ही अवलम्बन करना चाहिए मानी चातक कितना भी प्यासा क्यों न हो, केवल स्वांति नक्षत्र का ही जल ग्रहण करता है। यदि में भी मनुष्यता का किञ्चित् भी अभिमान हो तो यह व्रत लेना चाहिए कि चाहे अभावों भरा जीवन व्यतीत करना पड़े परन्तु अनीति और अन्याय से न तो धन अर्जित करेंगे और न ऐसे धन का उपयोग करेंगे। मधुमक्षिका पुष्पों के आस-पास मंडराती रहती है, उनका सार ग्रहण करती है : हम भी उनकी भाँति सज्जनों के समीप रहें तथा सद्विचारों को धारें।

जो जीवन मक्खियों की भाँति स्वार्थ—संकीर्णता की कीचड़

के ऊपर भिनभिनाने में व्यीतत होता है उसे धिक्कार है। जो इन्द्रियों का दास बनकर रहता है, वह अपने जीवन को व्यर्थ ही गंवा रहा है। इस देह की सार्थकता तभी है जब सात्विक तथा परोपकार की ज्योति से जगमगाता जीवन जीया जाये।

हम अपने जीवन को अनुकणीय बनायें। सत्य और प्रेम हमारी साँस-साँस में रमे हों। दया, सौजन्य, संयम, सेवा, और सहानुभूति हमारे आचार-विचार से पल्लवित पुष्पित हों—तभी सच्चे अर्थों में हम मानव कहलाने के योग्य हो सकते हैं।

हम शान्ति पूर्वक जियें और दूसरों को भी जीने दें। जो भूले भटके हैं, उन्हें जीवन का सही रास्ता दिखायें। उन्नति पथ पर जो चल रहे हैं, उन्हें आगे बढ़ने में सहयोग दें। स्वयं तो हम महान् बनायें।

यह समस्त विश्व परमात्मा का ही काव्य है। वही समस्त प्राणियों में समाया हुआ है। मैं—तू, अपना—पराया, यह जो वैयक्तिक सत्ता का व्यामोह है, उचित नहीं। जीवन का वास्तविक लक्ष्य है वैयक्तिक सत्ता में मिट जाना। इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए विषय वस्तु का ग्रहण यज्ञ भावना से करना है। संसार में असंख्य प्राणी हैं और सबको ही अपनी आवश्यकतायें पूर्ण करनी हैं। अतएव हमें भी अधिक का लोभ न करते हुए अपनी आवश्यकता के अनुरूप ही ग्रहण करना चाहिए। उससे अधिक लेना तो पाप है, अनधिकार चेष्टा है।

वस्तुतः लेने और देने, पाने और त्याग करने के विश्व नियम के अनुकरण में ही प्राणिमात्र का कल्याण सन्निहित है। त्याग ही भाग का आधार है। जो त्याग नहीं कर सकता उसे प्राप्त का अधिकार भी नहीं। संसार की इस यज्ञशाला में त्याग की आहुति देकर हमें भी ईश्वरीय प्रयोजन (विराट यज्ञ) में सहयोग देना चाहिए। ※

सच्चा प्रतिशोध

आज अवन्तिकापुरी का सभाभवन इस तरह सजा था, जैसे नववधु शृंगार करके ससुराल जाती है। युवराज आदित्यसेन आज वहाँ आने वाले थे, उन्ही के लिये साज-सज्जा की गई थी। दूर से आती हुई गज-घण्टा ध्वनि-घण्टा ध्वनि क्रमशः समीप होती आ रही थी। सभा-भवन के सभी परिचारक सन्नद्ध खड़े हो गये।

आदित्य सेन भवन के सामने आकर रुके। चरण पादुकायें उन्होंने द्वारपाल चित्रक के संरक्षण में छोड़ी और स्वयं सभाभवन के अन्तः प्रकोष्ठ में प्रवेश कर गये। चित्रक ने देखा युवराज की रेशम मढ़ी हुई पादुकाओं में ओस कणों के साथ कुछ धूल कण भी आ गये हैं, सो उसने उन्हें उठाकर अपने उत्तरीय वस्त्र (अंगोछे) से पोंछ देने का यत्न किया। द्वारपाल का वस्त्र मैला था, उससे पादुकायें और गन्दी हो गयी।

युवराज सभा भवन से बाहर लौटे। पादुकाओं की ओर देखा तो भौंहें तन गईं। कड़ककर पूछा—'किसने मैली की हैं यह पादुकायें ?' चित्रक भयभीत हो उठा, बोला—'क्षमा करें महाराज यह भूल.....।' वाक्य जब तक पूरा हो, चित्रक के कपाल पर उसी पादुका तीव्र प्रहार हुआ। मस्तक फट गया, रक्त बहने लगा। आदित्य सेन को थोड़ी सी भूल भी सहन न हुई। युवराज चले गये और चित्रक—प्रतिशोध की ज्वाला में जलता हुआ अपने घर पहुँचा।

कई दिन तक उसने अन्न न लिया, न जल। वह किसी प्रकार युवराज आदित्य सेन से प्रतिकार लेना चाहता था। सप्ताहों वह इसी प्रतिशोध की ज्वाला में जलता रहा। चित्रक को पत्नी कुशला ने समझाया—'स्वामी ! प्रतिशोध की भावना अग्नि की

तरह है, वह जहाँ भी जलती और शक्ति नष्ट करती है। यदि आपको युवराज से बदला ही लेना है तो उसका उपयुक्त मार्ग मैं बताती हूँ, उठिये और यह मलिनता परित्याग कर स्वस्थ होइये।

चित्रक उठे। स्नान किया, भोजन किया। स्वच्छ वस्त्र धारण कर बैठक में आये। कुशला वहाँ पहले से ही उपस्थित थी, उसने पहले ही प्रबन्ध कर रखा था। चित्रक को विद्याध्ययन के लिए वाराणसी भेज दिया।

काशी के विद्वानों के चरणों की छाया में बैठकर चित्रक ने दस वर्ष तक कठोर विद्याध्ययन किया। जब तक वह पुनः वाराणसी से लौटें, तब तक उनके पाण्डित्य की ख्याति सारे देश में फैल गई थी। चित्रक अब आचार्य बन गये थे।

युवराज आचार्य सेन भी अब महाराज आदित्य सेन हो गये थे। इन दिनों राजमाता अस्वस्थ थीं। वैद्यों के सारे उपचार निरर्थक हो गये थे, सो उसके उपचार के लिए यज्ञ चिकित्सा का आयोजन किया गया। उसका ब्रह्मा चित्रक को नियुक्त किया गया।

उन दिनों आचार्य को लोग महाराजाओं से अधिक सम्मान देते थे। चित्रक चाहते तो आदित्य सेन से बदला ले सकते थे। पर ऐसा करने की अपेक्षा उन्होंने आदित्य सेना की यह चरण पादुकायें माँग लीं और प्रतिदिन उनकी पूजा करने लगे। एक दिन आदित्य सेन ने पूछा—'आचार्य प्रवर! पुरानी चरण पादुकायें भी कोई पूजा की वस्तु हैं, फिर मैं आपका गुरु भी तो नहीं हुँ, उन पादुकाओं से आपका लगाव समझ में नहीं आया।

चित्रक ने कहा—'महाराज! इनकी कृपा से ही आज मैं इस पद पर विभूषित हुआ हूँ। आपने एक दिन यही पादुकायें मेरे शिर पर मारी थी। मैं प्रतिशोध से जल उठा था। सम्भव था

—: आवश्यक सूचनायें :—

१—श्री गुरु विरजानन्द आर्ष गुरुकुल मथुरा में प्रवेश इस वर्ष मई के प्रथम सप्ताह से लेकर जून के प्रथम सप्ताह तक ही चलेगा। अतः प्रवेश के लिए इसी कॉलम खण्ड में सम्पर्क करें।

२—अपने तपोभूमि परिवार से निवेदन है कि पूज्यपाद आचार्य प्रेमभिक्षु जी के अस्वस्थ होने की वज [illegible] क संस्था की गतिविधिओं का दायित्व निर्वहन [illegible] है, फिर भी प्रयास यही रहेगा कि तपोभूमि पत्रिक [illegible] ा-नुसार आपकी सेवा में उपस्थित करूँ। लेकिन [illegible] न आया तो हम अपने पाठकों से क्षमा चाहेंगे अ [illegible] के संकट की इस घड़ी में आपका प्रत्येक प्रकार का [illegible] एक सदस्य के नाते हमें प्राप्त होगा। धैर्य के साथ अ [illegible] ही प्रतीक्षा करें।

३—पूज्यपाद आचार्य वर द्वारा प्रस्तावि [illegible] न योजना का अभियान प्रगति पर है आचार्य प्रवर के आह्वान को सफल बनाने हेतु श्रद्धानुसार अपना सहयोग शीघ्र भेजें।

—आचार्य स्वदेश:

मुद्रक—ईश्वरीप्रसाद 'प्रेम' वैदिक प्रेस,
प्रकाशन तथुरा से प्रकाशित,